शोध मंथन Vol. XV No.I Jan.-Mar.2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.870 (SJIF)

क्रान्तिकारी पत्रकार : गणेश शंकर विद्यार्थी

प्राप्तिः 10.03.2024
स्वीकृतः 24.03.2024

11

प्रो० (डॉ०) अनीता प्रकाश
सेवानिवृत्त
इतिहास विभाग
एम०एम०एच० कॉलेज, गाजियाबाद

सुशील कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग
एम०एम०एच० कॉलेज, गाजियाबाद
ईमेलः *kumarsusheelsiwal@gmail.com*

सारांश

प्रस्तावित शोध पत्र का उद्देश्य गणेश शंकर विद्यार्थी जी के भारतीय मुक्ति संघर्ष के दौरान उनकी क्रान्तिकारी पत्रकारिता के योगदान का निरूपण करना है, यूँ तो विद्यार्थी जी के जीवन एवं उनकी पत्रकारिता पर बहुत शोध हुआ है और वर्तमान समय में भी उन पर शोध कार्य गतिमान है। भारतीय मुक्ति संघर्ष के सन्दर्भ में गणेश शंकर विद्यार्थी का योगदान एक शीर्षस्थ, स्थानीय, प्रान्तीय और राष्ट्रीय नेता का रहा है। परन्तु क्रान्तिकारी पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी भूमिका उपेक्षित रही है। अतः इस शोध पत्र के माध्यम से गणेश शंकर विद्यार्थी जी की क्रान्तिकारी पत्रकारिता पर प्रकाश डालने का प्रयास रहेगा।

मुख्य बिन्दु

उदात्त, ट्रस्ट, जंगजू, मार्मिक, स्वप्नलोक, विभूषित,वीथियों, औघट, कृतकृत्य, आक्षेप।

किसी भी लोकतांत्रिक समाज की व्यवस्था संचालन में पत्र–पत्रिकाओं की बहुत महत्वपूर्ण व शक्तिशाली भूमिका होती है। यह बात इससे भी सिद्ध है कि इन्हें राज्य के चतुर्थ अवयव की संज्ञा दी गई है। गणेश शंकर विद्यार्थी जी इस तथ्य से भली–भांति परिचित थे। पत्र–पत्रिकाएं जनसंपर्क के सशक्त माध्यम के रूप में न केवल प्रभावी भूमिका का निर्वाह करती है वरन् जनतांत्रिक शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए उचित वातावरण का निमार्ण भी करती है। यह समाज में सर्वत्र व्याप्त हैं और जन जीवन के विविध पक्ष, जिनसे नियंत्रित और संचालित है, उनके समस्त क्रियाकलापों पर भी पत्र–पत्रिकाओं की सतर्क दृष्टि रहती है।

राष्ट्रीय राजनय के संदर्भ में गणेश शंकर जी ने 'प्रताप' साप्ताहिक का प्रकाशन नवम्बर 1913 में ही आरम्भ कर दिया था।[1] परन्तु इससे पहले ही वे पत्रकारिता की दुनिया में प्रवेश कर चुके थे। 'प्रताप' का प्रकाशन जब शुरू हुआ तब से ही यह पत्र मुक्ति–संग्राम की गांधीवादी और क्रांतिकारी धारा को एक साथ लेकर चल रहा था। बहुत कम पूँजी से उन्होंने यह अखबार चलाया परंतु मात्र 03 वर्षों के भीतर प्रताप की वितरण संख्या को दो गुना कर लिया गया था। इसमें वे संपादकीय

लिखने से लेकर प्रुफ देखने, पते लिखने और डाक में डालने जैसे काम स्वयं किया करते थे। इसमें उनके सहयोगी थे शिवनारायण मिश्र। अपनी निर्भीकता, अभिव्यक्ति की क्षमता और स्पष्ट जनपक्षधार नीतियों पर चलने के कारण 'प्रताप' को ब्रिटिश सरकार का अनेक बार कोपभाजन बनना पड़ा। पर इस अखबार के जरिए जनता की क्रांतिकारी चेतना को पैनाए रखने का बड़ा दायित्व उन्होंने संभाल लिया था। उनकी क्रांतिकारी दृष्टि जहां विदेशी सत्ता की उत्पीड़नात्मक कार्यवाहियों पर थी, वहीं वे देश के किसानों और मजदूरों की स्थितियों को निरन्तर लक्ष्य करके उनके साथ मजबूती से खड़े दिखाई पड़ रहे थे। 'प्रताप' के अग्रलेखों और उसमें छपने वाली सामग्री को देखकर अनुमान होता है कि विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध अत्यंत कठिन संघर्ष के उस दौर में भी वे जनता के सवालों को गहरे से छू रहे थे क्योंकि जनता के ये प्रश्न उन्हें गहरे से मथ रहे थे। माना जा सकता है कि 'प्रताप' का अपने पाठकों से बहुत अनोखे ढंग का संवाद था। यही कारण था कि उस दौर में वह जनता के बीच सर्वाधिक चहेता समाचार पत्र बन गया था। वास्तव में गणेश शंकर विद्यार्थी जी के संदर्भ में यह निर्विवाद है कि 'प्रताप' की ऐतिहासिक भूमिका का मूल्यांकन ही विद्यार्थी जी के राजनीतिक मूल्यांकन का आधार है।[2]

उनकी कलम के प्रभाव से ही सोलह पृष्ठों के इस साप्ताहिक की पृष्ठ संख्या बढ़कर चालीस तक पहुंच गई थी। उस समय 'प्रताप' का मूल्य दो रुपये प्रति था और वह देश के दूरदराज इलाकों तक पहुंचता था। कहा जाता है कि सुदूर पहाड़ों में इस अखबार को पढ़ने–सुनने के लिए लोग डाकखानों पर श्रद्धालुओं की तरह जमा हो जाते थे। इसका एक कारण यह भी था कि गणेश शंकर जी अपने पाठकों का बहुत ध्यान रखते थे। यहां तक कि 'प्रताप' में विज्ञापनों का प्रकाशन भी वे बहुत सोच–समझ कर किया करते थे। साथ ही वे ऐसे विज्ञापन भी न दंते थे जिनमें लोग झूठी बातें कहकर जनता को ठगने का शड्यंत्र करते थे।

विद्यार्थी जी इसे राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार के लिये बहुत खतरनाक मानते थे। वे जिस विज्ञापनदाता के संबंध में शिकायत सुनते उसकी सच्चाई की जांच करते और यदि वास्तव में वह विज्ञापनदाता छद्म साबित होता तो उसी समय बिना किसी बात की चिंता किए हुए कि उससे 'प्रताप' को कितनी आर्थिक हानि उठानी होगी, वे उसका विज्ञापन छापना बन्द कर देते थे। 'प्रताप' से जनता की सेवा ही हो, उससे किसी पाठक का कोई नुकसान न हो इस बात का वे बहुत ध्यान रखते थे। 'प्रताप' में जो सामग्री दी जाती थी, उसकी कसौटी यही थी। अश्लील बातो से भरे विज्ञापनों के लिए वहां कोई स्थान न था। जिस तरह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पाठकों के प्रति इतने संवेदनशील थे कि वे अपने लेख अपनी कम पढ़ी–लिखी पत्नी के समझ लेने पर ही छपने देते थे, उसी तरह गणेश शंकर जी की भी दृष्टि कलम चलाते समय आम पाठक पर टिकी रहती थी।[3]

राष्ट्रीय महत्व का कोई विषय क्यों न हो, विद्यार्थी जी एक बार तहकीकात के बाद सत्य और न्यायपूर्ण बात के प्रकाशन करने से कभी हिचकते न थे। जांच के बाद तो वह बड़ी से बड़ी विपत्ति का भी प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करते थे। संपादकीय कर्त्तव्य के इस अंग का प्रतिपालन गणेशजी ने अपना तन–मन सब कुछ न्योछावर करके किया। लोक सेवा का यह कर्त्तव्य संपादक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, और गणेशजी ने बड़ी से बड़ी कीमत देकर भी इसका आजन्म पालन

किया। अपनी इसी कर्त्तव्यपरायणता के कारण उन्हें जाने कितनी बार जेल जाना पड़ा, जमानतें देनी और जब्ती करवानी बड़ी। न जाने कितने जमींदारों, ओहदेदारों, राजों और महाराजाओं की नाराजगी उठानी पड़ी और न जाने क्या–क्या कष्ट सहने पड़े। इस प्रकार के समाचार पाकर लोग अपना उल्लू सीधा करने की ताक में रहते हैं, मगर गणेशजी के उदात्त विचारों में इस प्रकार की गंदगी कभी नहीं आई।[4] वह बड़े से बड़े प्रलोभनों से भी विचलित नहीं हुए। पत्रकार के लिए अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना तथा और भी अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने के लिए उत्सुक रहना विशेष गुण समझा जाता है।' प्रताप' को जनता का जिस तरह अभूतपूर्व सहयोग मिला, उससे गणेश शंकर जी के मन में एक ट्रस्ट के गठन का भी विचार आया। उनकी इस योजना से शिवनारायण मिश्र भी सहमत थे। अतः 15 मार्च 1919 को प्रताप–ट्रस्ट का रजिस्ट्रेशन कराया गया जिसमें गणेशशंकर विद्यार्थी, शिवनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. जवाहरलाल रोहतगी ओर लाला फूलचंद थे।[5] उस समय तक 'प्रताप' के संपादक–मुद्रक–प्रकाशक के रूप में गणेश शंकर जी का नाम ही जा रहा था। पर अब इसका मुद्रक–प्रकाशक शिवनारायणजी को बनाया गया। जानने योग्य है कि जब गणेश शंकर जी मजिस्ट्रेट के पास इस आशय का घोषणापत्र जमा करने गए तो उनसे जमानत की धनराशि एक हजार से बढ़ा कर दो हजार रुपये मांगी गई। मजिस्ट्रेट मि. स्ट्राइफ ने यह भी कहा कि चूंकि नए प्रिंटर का इस 'बदनाम पत्र' से पुराना संबंध है और पहले वाला प्रिंटर (गणेश शंकर जी) जो हाल में ही हुई कानपुर की मजदूर हड़तालों की खुली नेतागीरी करता रहा, ट्रस्ट में भी है, अतः प्रकाशक को चेतावनी दी जाती है कि उसे पत्र प्रकाशित करने की आजादी उस समय तक नहीं है जब तक वह मेरी अदालत में जमानत न दाखिल कर दे। जमानत दाखिल कर दी गई। लेकिन 'प्रताप' ऐसी चेतावनियों को मानने वाला कहां था। उसके अस्तित्व की शर्त ही देश में स्वतंत्रता की अलख जगाने और जनता को सामंती उत्पीड़न के खिलाफ जंगजू बनाने में निहित थी।

विष्णुदत्त शुक्ल के ग्रंथ पत्रकार कला में विद्यार्थीजी ने लिखा[6]–'संसार के अधिकांश समाचार पत्र पैसे कमाने और झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करने में उतने ही लगे हुए हैं जितने कि संसार के बहुत–से चरित्र–शून्य व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचार पत्र धनी–मानी लोगों द्वारा संचालित होते हैं। इसी प्रकार के संचालन के लिए वे हर समय, हर तरह के हथकंडों से काम लेना नित्य का आवश्यक काम समझते हैं। इस काम में वे इस बात का विचार करना आवश्यक नहीं समझते कि सत्य क्या है। सत्य उनके लिए ग्रहण करने की वस्तु नहीं है, वे तो अपने मतलब की बात चाहते हैं। संसार–भर में यह हो रहा है। इने–गिने पत्रों को छोड़ कर, सभी पत्र ऐसा कर रहे हैं। जिन लोगों ने पत्रकारिता को अपना पेशा बना रखा है, उनमें ऐसे बहुत कम लोग हैं जो अपने चित्त को इस बात पर विचार करने का कष्ट उठाने का अवसर देते हों कि हमें सच्चाई की भी लाज रखनी चाहिए, केवल अपनी दाल–रोटी के लिए दिन भर में कई रंग बदलना ठीक नहीं है। इस देश में भी दुर्भाग्य से समाचार पत्रों और पत्रकारों के लिए यही मार्ग बनता जा रहा है। हिंदी पत्रों के सामने भी यही लकीर खिंचती जा रही है। यहां भी अब बहुत–से साधारण समाचार पत्र सर्वसाधारण के कल्याण के लिए नहीं रहे, सर्वसाधारण उनके प्रयोग की वस्तु बनते जा रहे हैं। विद्यार्थीजी के लिये

यह बड़े कष्ट का विषय था कि राष्ट्रीय महत्व के पत्रों में अधिकांशतः जनकल्याण से जुड़े विषयों की निरंतर कमी होती जा रही थी। संभवतः यही कारण था कि विद्यार्थीजी ने अपने प्रताप को समस्त जन आकांक्षाओं के प्रदर्शन का केन्द्र ही मान लिया था।[7]

गणेश शंकर जी में एक अच्छे संपादक की सभी खूबियां मौजूद थीं और इसी खूबी का उपयोग उन्होंने राष्ट्रीय राजनीति के विविध विषयों को जनसामान्य तक पहुँचाने में किया। वे जहां निर्भीकतापूर्वक 'प्रताप' का संपादन और प्रकाशन करते रहे, वहीं कितने ही लोगों को लेखक और पत्रकार बनाने में उन्होंने भरपूर सहयोग किया। उन्होने यदि 1924 के कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन के सफल आयोजन में हाथ बॅटाया, तो वहीं प्रताप के कार्यालय को क्रांतिकारियों का अड्डा कहा जाता था जो बिना विद्यार्थीजी की सहमति से संभव नहीं था।[8] कांग्रेस में रहकर इस तरह क्रांतिकारी आंदोलन को सहयोग करना गणेश शंकर जी के ही बूते की बात थी। वे संकीर्ण मनोवृत्ति के थे ही नहीं। वे हमेशा ऐसे व्यक्तियों की खूब प्रशंसा करते थे जिनसे उनका मतभेद होता था। पं. रामप्रसाद बिस्मिल की फांसीघर में लिखी आत्मकथा का प्रकाशन उन्होंने 'प्रताप' प्रेस से ही किया था। काकोरी के क्रांतिकारियों की फांसियों पर 'प्रताप' के एक अग्रलेख में लिखी गई उनकी मार्मिक टिप्पणी इसका सबसे बड़ा साक्ष्य है।[9] 'वे दीवाने!' शीर्शक में उनके शब्द इस प्रकार थे– 'अनुत्तरदायी? जल्दबाज? अधीर आदर्शवादी? लूटेरे? डाकू? हत्यारे अरे ओ दुनियादार? तू उन्हें किस नाम से, किस गाली से विभूषित करना चाहता है? 'वे मस्त हैं, वे दीवाने हैं, वे इस दुनिया के नहीं। वे स्वप्नलोक की वीथियों में विचरण करते हैं। उनकी दुनिया में शासन की कटुता से, मां धरित्री का दूध अपेय नहीं बनता। उनके कल्पना लोक में ऊँच–नीच का, धनी निर्धन का, हिंदू मसुलमान का भेद नहीं है। इसी संभावना का प्रचार करने के लिए वे जीते हैं। इसी दुनिया में उसी आदर्श को स्थापित करने के लिए वे मरते हैं। दुनिया के पठित मूर्खों की मंडली उनको गालियां देती है लेकिन यदि सत्य के प्रचारक गालियों की परवाह करते तो शायद दुनिया में आज सत्य, न्याय, स्वातंत्र्य और आदर्श के उपासकों के वंश में कोई नाम लेवा और पानी देवा भी न रह जाता। लोक रुचि अथवा लोकोक्तियों के अनुसार जो अपना जीवन यापन करते हैं, वे अपने पड़ोसियों की प्रशंसा के पात्र भले ही बन जाएं, पर उनका जीवन औरों के लिए नहीं होता। संसार को जिन्होंने ठोकर मारकर आगे बढ़ाया वे सभी अपने–अपने समय में लांछित हो चुके है। दुनिया खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने तथा उपयोग करने की वस्तुओं का व्यापार करती है। पर कुछ दीवाने चिल्लाते फिरते हैं–'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।' ऐसे कुशल किंतु औघट व्यापारी भी कभी देखे है? अगर एकबार आप हम उन्हें देख लें तो कृतकृत्य हो जाए।'

गणेश शंकर जी के जीवन, उनके त्याग, आदर्श और सिद्धांतप्रियता में राष्ट्रीयता का प्रत्येक स्रोत सम्मिलित था। गणेशजी ने 'प्रताप' में नये विचारों की पौध को भी लगाने का प्रयत्न अपने समय में किया। उनके द्वारा तराशे गये एक ऐसे ही रत्न श्रीकृष्णदत्त पालीवाल को साथ जोड़ने के लिए विद्यार्थीजी ने 'प्रभा' का प्रकाशन षुरू कर दिया जिसका संपादन पालीवाल ने 'देवदूत बी.ए.' के नाम से किया।[10]पालीवाल जी का मानना था कि 'प्रभा' के संपादकों में देवदूत के नाम के अतिरिक्त गणेशजी के नाम का जाना पत्रिका की सफलता के लिए आवश्यक था। यद्यपि

एक बड़ी समस्या थी कि पालीवाल जी की संपादकीय टिप्पणियाँ अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त करती थीं, जो कभी–कभी गणेशजी के विचारों के प्रतिकूल भी होती थीं। ऐसे ही एक अवसर पर एक अन्य दैनिक पत्र ने गणेशजी पर यह आक्षेप किया कि 'प्रताप' में वे जो विचार व्यक्त करते हैं, 'प्रभा' में उसी के प्रतिकूल लिखते हैं। इस पर गणेशजी ने पालीवाल जी को कुछ कहने के स्थान पर उस पत्र के आक्षेप का यही उत्तर दिया कि 'प्रभा' के दूसरे संपादक भी हैं। पालीवाल जी स्वयं 'प्रताप' में 1920 में बहुधा असहयोग आंदोलन के विरूद्ध अग्रलेख लिखते थे, जबकि गणेशजी असहयोग आंदोलन के परमभक्त और अनुयायी थे। उस समय पालीवाल के विचारों के कारण 'प्रताप' को भारी हानि पहुंची थी। लोगों ने प्रेस को जला देने तक की धमकी दी। ग्राहक संख्या चौदह हजार से घटकर सात हजार रह गई। लेकिन गणेशजी ने पालीवाल को यह नहीं कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो? स्पष्ट है कि गणेशजी सभी प्रकार के विचारों को अहमियत देते थे और उसे बढ़ावा देने के लिये भी तत्पर थे।

'उनकी सिद्धांतप्रियता का एक और उदाहरण है। रायबरेली मानहानि केस आदि आघातों के फलस्वरूप दैनिक 'प्रताप' बंद हो चुका था। उसके कुछ दिन बाद मई सन् 1922 में होने वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में शामिल होने के लिए गणेषजी लखनऊ जा रहे थे।[11] कानपुर स्टेशन पर उसी गाड़ी में जाते हुए जमनालाल बजाज ने गणेशजी को देखकर उन्हें अपने पास बुला लिया। लखनऊ पहुंचकर गणेशजी ने साथी यात्री पालीवाल से कहा कि जमनालाल बजाज जी कह रहे है कि दैनिक 'प्रताप' निकालो, उसके लिए दस हजार रुपये की सहायता मैं दे दूंगा। इस पर कृष्णदत्त पालीवाल ने गणेशजी से कह कि 'जमनालालजी से रुपये लेकर दैनिक 'प्रताप' निकालना ठीक न होगा। यद्यपि जमनालालजी आपका आदर करते हैं तथापि महात्मा गांधी में उनकी श्रद्धा आपसे भी अधिक है। इसलिए सहज ही वे आपसे यह आशा करेंगे कि 'प्रताप' में महात्मा गांधी के कार्यक्रम की आलोचना न की जाए। महात्माजी के कार्यक्रम की आलोचना होने पर वे चाहें कुछ भी न कहें, तब ही मन में तो यह अनुभव अवश्य करेंगे कि यह तो ठीक नहीं हो रहा। गणेशजी स्वयं तो महात्माजी के अनन्य भक्त थे परंतु चूंकि पालीवाल उन दिनों महात्माजी के असहयोग आंदोलन से सब बातों में सहमत नहीं थे, इसलिए उनके मनोभावों का ख्याल करके गणेशजी ने जमनालालजी की सहायता को स्वीकार नहीं किया। संसार में कितने लोग इस प्रकार के त्याग का परिचय दे सकते हैं।'

गणेशशंकर अपने जीवन में भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में बहुत उच्च नैतिक आदर्श स्थापित कर गए। उनका मार्ग कठिन जरूर है, पर उस पर चले बिना मौजूदा पत्रकारिता की वह खोई हुई पहचान वापस नहीं लौट सकती और न ही वह समय और समाज का भला कर सकेगी। यदि हम गणेशशंकर विद्यार्थी जी और उनके 'प्रताप' की जनपक्षधर भूमिका की ओर वापस मुड़कर देखते हैं तो हमें तत्कालीन राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख तत्वों का भली प्रकार आभास हो जायेगा।

संदर्भ

1. भटनागर, डॉ० रामरतन. (1987). द राइज ऐंड ग्रोथ ऑफ हिंदी जर्नलिज्म. किताब महलः इलाहाबाद. पृष्ठ 131.

2. माथुर, डॉ० आनंदी प्रसार. (1998). अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी. रजनी प्रकाशनः दिल्ली. पृष्ठ **56.**
3. वही. पृष्ठ **61.**
4. राणा, डॉ० भवान सिंह. (1989). अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी. अनिल प्रकाशनः नई दिल्ली. पृष्ठ **56.**
5. राय, विष्णु कुमार. (2006). गणेश शंकर विद्यार्थी एवं स्वतंत्रता आंदोलनः सनराइज पब्लिकेशंसः नई दिल्ली. पृष्ठ **94.**
6. शुक्ल, विष्णुदत्त. (1920). पत्रकार कला. शुक्ल सदनः उन्नाव. पृष्ठ ख (भूमिका)।
7. ब्रह्मानंद, डॉ०के०. (1986). भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता. वाणी प्रकाशनः दिल्ली. पृष्ठ **94.**
8. वही. पृष्ठ **97.**
9. राणा, डॉ० भवान सिंह. (1989). अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी. अनिल प्रकाशनः नई दिल्ली. पृष्ठ **77.**
10. तिवारी, विनोद. (2012). गणेश शंकर विद्यार्थी. राजा पॉकेट बुक्सः दिल्ली. पृष्ठ **128.**
11. भटनागर, डॉ० रामरतन. वही. पृष्ठ **161.**